ISSN: 2249-894X IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF) VOLUME - 6 | ISSUE - 11 | AUGUST - 2017

REVIEW OF RESEARCH

प्रेमचंद साहित्य का सिनेमाई रूपांतरण

चन्देश्वर चौधरी
हिन्दी विभाग, आर.बी.एस. महाविद्यालय, तियाई.

प्रस्तावना :

साहित्यिक रचनाओं का सिनेमाई रूपांतरण कोई नई बात नहीं है। सवाक फिल्मों के आरंभ से ही यूरोप और अमेरिका में शेक्सपीयर, दोस्तोवस्की, गोकीं, तॉल्सतॉय, चेखव आदि कई महान लेखकों की कृतियों पर फिल्में बनी हैं। भारत में भी रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, शरतचन्द, रेणु, मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, आर.के.नारायण आदि अनेक कथाकारों की रचनाओं पर सफल–असफल फिल्में बन चुकी हैं और आज भी बन रही हैं।

प्रेमचंद हिंदी क्षेत्र के पाठकों की भांति ही सिनेमा से जुड़े लोगों के लिए भी आकर्षण थे। भारतीय सिनेमा के इतिहास में यदि पहली बार किसी समकालीन उपन्यासकार की किसी फिल्म की कथा–पटकथा लिखने के लिए विशेष तौर पर बुलाए जाने का सौभाग्य प्राप्त है तो वह प्रेमचंद ही हैं। हिंदी कथा साहित्य को जीवन के यथार्थ की ओर ले जाने वाले प्रेमचंद देश ही नहीं दुनिया में मशहूर हुए। उन्होंने साहित्य में यथार्थवादी परंपरा की नींव रखी। सिनेमा और साहित्य अलग–अलग विधा हैं लेकिन दोनों का पारस्परिक संबंध काफी गहरा है। चर्चित उपन्यासों और कालजयी रचनाओं पर आधारित फिल्में हर दौर में पसंद की जाती रही हैं। यही वजह है कि समय–समय पर निर्देशक, निर्माता ऐसे उपन्यासों को खोजकर–टटोलकर उन पर फिल्म बनाना पसंद करते रहे हैं। प्रेमचंद की कथा–रचनाओं पर भी अनेक फिल्मकारों ने फिल्में बनाई। हां यह सच है कि इनमें से अधिकांश फिल्में असफल ही रहीं।

प्रेमचंद की कथाकृति पर बनने वाली पहली फिल्म मिल मजदूर' थी। यह फिल्म 1934 में अजंता सिनेटोन, मुम्बई के द्वारा बनाई गई। इस फिल्म के साथ प्रेमचंद का फिल्मी दुनिया में पदार्पण हुआ परंतु यह काफी दुखद और विवादास्पद रहा। प्रेमचंद की मूल कहानी में तो परिवर्तन किया ही गया, वह प्रतिबंधित भी कर दी गई। बाद में पंजाब, दिल्ली और लाहौर आदि शहरों में रिलीज हुई, लेकिन कई विवादों में घिरी रही। कई परिवर्तनों के साथ प्रदर्शित इस फिल्म को देखने के बाद अपने एक लेखक मित्र से प्रेमचंद ने कहा– ''यह है प्रेमचंद की हत्या। यह प्रेमचंद की कहानी (नहीं), फिल्म के डायरेक्टर और मालिक की कहानी है।'' **(राम आनंद, सं. प्रेमचंद रचनावली, भाग 19, जनवाणी प्रकाशन, दिल्ली, 1996, पृ. 444)**

प्रेमचंद दरअसल इस फिल्म में किए जाने वाले परिवर्तन और सरकार द्वारा उसे प्रतिबंधित किए जाने से काफी दुखी हुए। इस फिल्म का उद्देश्य श्रमिकों और मालिकों के संबंधों को बेहतर बनाना था, क्रांति की प्रस्तावना करना नहीं। किंतु निर्विवाद रूप से यह पहली हिंदी फिल्म दशाएं, मैनेजरों की सामंती प्रवृत्ति, मजदूरों के अधिकारों के हनन और मालिक द्वारा अपनाए जाने वाले तरह–तरह के हथकडों को बृहद रूप में 1दिखाया गया था। परिस्थिति से परेशान मजदूरों द्वारा हड़ताल का भी प्रभावी चित्रण हुआ था। हालांकि उसके चरित्रांकन कमजोर और यथार्थ से परे थे। इस फिल्म के दौरान प्रेमचंद ने यह जाना कि फिल्मी जगत में लेखक कितना महत्वहीन प्राणी बनकर रह गया है। उन्होंने देखा कि एक निर्देशक बिना लेखक से पूछे ही कहानी में मनमाने बदलाव कर सकता है। इन सबके बावजूद इस फिल्म में प्रेमचंद अपनी बात कहने में सफल रहे और फिल्म में उनके लेखकीय प्रभाव को नोटिस किया गया। पूंजीवादियों की पोल खोलती इस फिल्म में प्रेमचंद ने एक छोटी–सी भूमिका भी की थी। इस फिल्म के अंतिम स्वरूप और प्रदर्शन से निराश प्रेमचंद ने 28 नवंबर 1934 को बंबई से जैनेन्द्र कुमार को भेजे अपने पत्र में लिखा– ''मैं जिन इरादों से आया था, उनमें से एक भी पूरा होता नहीं दीख रहा है। यहां प्रोडयूसर जिस ढंग की कहानियां बनाते हैं, उसकी लीक से जी भर भी नहीं हट सकते। वल्गारिटी को ये लोग एंटरटेनमेंट वैल्यू कहते हैं।'' **(50, माधुरी, 1 अक्टूबर, 1964)**

प्रेमचंद ने लिखा था कि अद्भुत में ही इनका विश्वास है। प्रोडयूसरों के साधन हैं। उन्होंने आगे लिखा है कि मैंने सामाजिक कहानियां लिखी हैं, जिन्हें शिक्षित समाज भी देखना चाहे, लेकिन उन पर फिल्म बनाने में इन लोगों को संदेह होता है कि कहीं फिल्म न चले तो क्या होगा।

1934 में अजता सिनेटोन द्वारा प्रेमचंद की कहानी के आधार पर 'नवजीवन' फिल्म का निर्माण किया गया। आदर्शवादी प्रेम पर आधारित यह फिल्म प्रेमचंद की कहानी पर आधारित उनकी दूसरी फिल्म थी। हालांकि उनकी कहानी में व्यापक परिवर्तन किया गया था।

प्रेमचंद के महत्वपूर्ण उपन्यास श्सवासदन' पर 1934 में 'बाजारे हुस्न' नाम से एक फिल्म बनी थी, प्रेमचंद ने जब यह फिल्म देखी तो वे संतुष्ट नहीं हुए। उन्हें लगा कि वे जो अपने उपन्यास के माध्यम से कहना चाहते हैं, फिल्म में वह तथ्य उस तरह से नहीं उभर पाया है। दरअसल 'सेवासदन' उपन्यास भारतीय स्त्री की पराधीनता की समस्या पर लिखा गया था। इसमें प्रेमचंद ने पुरानी परंपराओं को तोड़ते हुए उस समय की स्त्री–पराधीनता के कड़वे यथार्थ को चित्रित किया है। यह उपन्यास स्त्री जीवन के संघर्षों की जटिलताओं को रेखांकित करता है, लेकिन जब इस पर फिल्म बनती है तो वह उन जटिल बुनावट और ढोंगियों, पाखडियों पर धारदार प्रहार को सही तरीके से रखने में असफल हो जाती है। सेवासदन पर बनी फिल्म भी नाच–गाने और सस्ते मनोरंजन वाली मामूली फिल्म बनकर रह गई। शुरू में प्रेमचंद इस फिल्म को लेकर उत्साहित थे और उन्होंने इसको लेकर मुंबई (बंबई) में एक भाषण भी दिया था। उन्हें शुरू में लगा था कि सेवासदन पर यदि फिल्म बनेगी तो लोगों पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ेगा, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। इस फिल्म को बनाने वाले नानूभाई वकील सेवासदन जैसे गांभीर उपन्यास पर अच्छी फिल्म नहीं बना पाए। दरअसल प्रेमचंद के उपन्यास समाज की कडवी सच्चाई को हूबहू प्रस्तुत करते रहे हैं और कई फिल्म समीक्षकों का मानना है कि उनकी यथार्थवादी कथाएं बहुत सिनेमैटिक नहीं हैं। यहां एक और तथ्य की ओर ध्यान देना जरूरी है कि उन्हीं दिनों तमिल भाषा में सेवासदन उपन्यास पर के. सुब्रह्मण्यम क निर्देशन में बनी फिल्म की खूब सराहना हुई थी और इसे मूल कहानी के साथ न्याय करने वाली फिल्म कहा गया था। 1936 में प्रेमचंद का निधन हो गया। रूपांतरण में सर्वश्रेष्ठ था। लेकिन उनकी कथा–कृतियों पर फिल्म बनाने का क्रम जारी रहा। उनके निधन के एक दशक बाद उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' पर 1946 में भवनानी प्रोडक्शन मुंबई द्वारा इसी नाम से फिल्म बनाई गई। यह फिल्म प्रेमचंद के साहित्य पर बनी अब तक की फिल्मों से कहीं अच्छी थी। उनके उपन्यास में वर्णित औद्योगिकीकरण की समस्या और पूंजीपतियों और मजदूरों के संघर्ष को इस फिल्म में प्रभावी ढंग से दर्शाया गया था। प्रमुख पात्र सूरदास का चरित्रांकन और फिल्म का संवाद भी स्वाभाविक और मूल कृति के निकट था। हालांकि अभिनय की कमी, परिवेश के फिल्मांतरण की कमजोरी आदि के चलते इस फिल्म को भी एक सफल रूपांतरण नहीं माना जा सकता है फिर भी यह एक महत्वपूर्ण फिल्म थी।

इसके साथ ही आजादी से पूर्व प्रेमचंद की उर्दू कहानी 'औरत की फितरत' यानी 'त्रियाचरित्र' पर आधारित 'स्वामी' फिल्म का भी निर्माण किया गया। हालांकि प्रेमचंद इस फिल्म में किए गए परिवर्तनों से काफी क्षुब्ध थे।

स्वाधीनता के बाद से लगातार अनेक साहित्यिक कृतियों के सिनेमाई रूपांतरण का प्रयास किया गया। बाद में नव सिनेमा आदोलन ने उसे और आगे बढ़ाया। आजादी के बाद प्रेमचंद की कृतियों के आधार पर कई और फिल्में भी बनाई गई। जिनमें कुछ फिल्में काफी सफल और उत्कृष्ट फिल्मांतरण के रूप में रेखांकित हुई।

'रंगभूमि' के निर्माण के लगभग बारह–तेरह वर्षों के बाद निर्माता–निर्देशक कृष्ण चोपड़ा ने प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'दो बैलों की कथा' के आधार पर 1959 में 'हीरा–मोती' नामक फिल्म का निर्माण किया। यथार्थ की दृष्टि से 'हीरा–मोती' एक गांव में भारतीय किसान के जीवन की वास्तविक झांकी प्रस्तुत करती हुई फिल्म थी। बलराज साहनी और निरूपा राय अभिनीत इस फिल्म को आशातीत सफलता और सराहना मिली। छोटी कहानी, घटनाओं की सीमितता के बीच कृष्ण चोपड़ा ने इस फिल्म को बड़ी कुशलता के साथ बनाया। हीरा–मोती नामक दो बैल जो पशु होकर भी मानव प्रेम और स्वतंत्रता के महत्व को भलीभांति समझते हैं, इस फिल्म के कथानक का आधार है। मूक पशुओं के द्वारा भी अत्याचार और शोषण का प्रतिरोध दिखाकर प्रेमचंद ने मनुष्य की आईना दिखाया है। इस प्रतीकात्मक कहानी के जरिए प्रेमचंद ने अकर्मण्यता छोड़कर अन्यायी और शोषक अग्रेज को शासन को समाप्त करने का संदेश दिया था। फिल्म कहानी के मर्म को निभाने में सफल रही। संवाद, वातावरण आदि को स्वाभाविक पात्र, अभिनय आदि के जरिए पुनरू सृजित किया गया है। बेहतरीन संपादन, गीत–संगीत की सुंदर योजना आदि निर्देशक ने बड़ी मेहनत और कुशलता से की है। समीक्षकों ने 'हीरा–मोती' की 'दी बैलों की कथा' का सफल और जीवंत रूपांतरण माना है और यह प्रेमचंद की कृतियों के अब तक के रूपांतरण में सर्वश्रेष्ठ था।